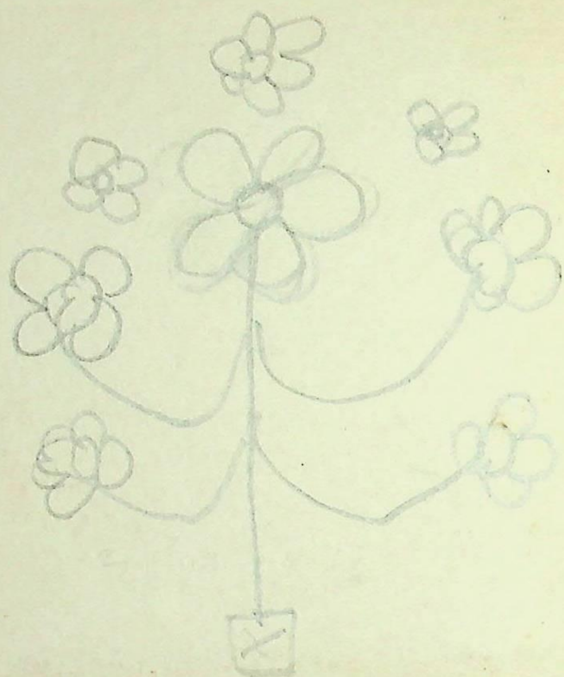


गुरु नानक देव

प्राणनाथ वानप्रस्थी



वेद प्रचारक मण्डल, ७ ए लाजपत नगर, लखनऊ
नि शुल्क ट्रैक्ट १ स्वयं पढ़ें और पढ़ायें

वैदिक धर्म
की
मान्यतायें

लेखक
श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक
कविराज हरनामदास बी० ए०

तीर्थ, मोक्ष, साधु, पण्डित; ब्राह्मण, गुरु, स्वर्ग नरक जप, तप, व्रत, दान धर्म का, वास्तविक स्वरूप
(वेद शास्त्र, रामायण, महाभारत, भगवदगीता, सत्यार्थ प्रकाश, श्रीमद्भागवत आदि पर आधारित विवेचन तथा आधुनिक काल की धर्म-सम्बन्धी कुछ समस्याओं का समाधान।

इस उपयोगी ट्रैक्ट के धर्मार्थ वितरण के लिए धन भेज कर सहायता करें। इसे धर्मार्थ बांटने का भी पुरुषार्थ करें।

तीर्थ शब्द का अर्थ

'तरन्ति येन यस्मिन् वा, तत्तीर्थम्'। अर्थात् जिस से जन तरते हैं या जिस में जन तरते हैं उसको तीर्थ कहते हैं।

'तीर्थ' क्या है ?

व्यवहारार्थ जो मनुष्यों को दुःख-सागर से पार उतारते हैं ॥

जो मनुष्य को समुद्रादि जलाशयों के पार जाने में समर्थ बनाते हैं, संस्कृत व्याकरणानुसार वे नौकादि) भी तीर्थ होते हैं।

वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य भाषण, माता पितादि की सेवा, परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान, विज्ञान आदि शुभ गुण कर्म (ये सब दुःखों से तारने वाले होने से 'तीर्थ' हैं। (स० प्र० समु० ११)

जिससे दुःख सागर से पार उतरे, कि जो सत्यभाषण, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म है, उन्हीं को तीर्थ समझता हूं, इतर जल स्थलादि को नहीं। (स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश)

वेदादि सत्य शास्त्रों का नाम 'तीर्थ' है जिनके पढ़ने, पढ़ाने, और उनमें कहे हुए मार्गों में चलने से मनुष्य लोग दुःख-सागर को तर के सुखों को प्राप्त होते हैं। (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका)

जितने विद्याभ्यास, सुविचार, ईश्वरोपासना, धर्मानुष्ठान, सत्य का संग, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियतादि उत्तम कर्म हैं वे सब 'तीर्थ' कहाते हैं क्योंकि इनको करके जीव दुःख सागर से तर जा सकते हैं। (आर्योद्देश्य रत्नमाला)

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके ऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

अ० १२ श्लोक १२३

अर्थ—उस परमेश्वर को कोई अग्नि, कोई मनु, कोई प्रजापति, कोई इन्द्र, कोई प्राण नाम से पुकारते हैं। कोई उसे तीर्थ कहते हैं।

पुराण

"नरसिंह पुराण" के अध्याय ६७ में कहा गया है कि मन का निर्मल रखना-इन्द्रियों को जीतना-माता-पितादि की सेवा करना-अपने धर्म का पालन करना-यज्ञ करना तीर्थ हैं। इन्हीं को पुण्य तीर्थ कहते हैं।

महाभारत

"महाभारत" के शान्ति पर्व अध्याय १३३ में देवता, ऋषि, पितर, गुरु, देवस्थान आदि की सेवा करने को ही तीर्थ कहा गया है।

तीर्थस्थानों का महत्व

प्राचीन काल में हमारे पूर्वज महर्षिगण गंगादि के तटों पर बने अपने आश्रमों में निवास करते थे, जहां का जलवायु स्वच्छ और स्वास्थ्य-वर्द्धक होता था। इन पवित्र और मनोरम प्रदेशों में वे जप, तप, दान और योगाभ्यास करते कराते थे, विद्यार्थियों को ज्ञान दान देते थे और जिज्ञासु यात्रियों को धर्मोपदेश देते थे।

सांसारिक अशान्ति से सतप्त और परिश्रान्त जन इन स्थानों में जाकर विश्राम किया करते थे। तपोधन साधुओं, सन्तों और महात्माओं के दर्शन से इन्हें आत्मिक शान्ति का लाभ होने के अतिरिक्त उन महानुभावों के सत्संग से 'दुर्वासनाओं से मलिन मन' शुद्ध और परिष्कृत हो जाया करते थे। ऐसे स्थानों को तीर्थ कहा जाता था। मार्कण्डेयजी महाराज ने कहा है कि जहां वेद के जानने वाले, व्रत करने वाले ज्ञानी, तपस्वी, ऋषि, मुनि और ब्राह्मण रहते हैं वह भी तीर्थ है, चाहे वह गांव हो या जंगल।

साधु, वैरागी, ब्राह्मण, गुरु महात्मा आदि के वास्तविक लक्षण

१- श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ११ में लिखा है:—

साधयति परकार्याणि स्वकर्माणि च सःसाधुः ।

जो मनुष्य निज हित के कार्यों के समान परोपकार के कार्यों का करना अपना कर्तव्य समझता है, उसी का नाम साधु है ।

२- पूर्णज्ञानी का नाम "महात्मा" है ।

३- परमेश्वर में अत्यन्त प्रीति, अनुराग, तथा संसार से वैराग्य हो जाने से, अपनी पराई या मण्डल की, एव सभा-सोसाइटी आश्रम आदि की' धन सम्पत्ति में कोई आसक्ति, लगन, रुचि जिस व्यक्ति में नहीं होती उसे 'वैरागी' कहते हैं ।

४- जो अपने धर्म शास्त्र के आदेश को जानने वाला हो तथा तदनुसार आचरण करने वाला, छल-कपट रहित, अति प्रेम से विद्यादाता, चरित्रवान्, परोपकारी, तन, मन, धन से पर-सुख बढ़ाने में तत्पर, निरपेक्ष, सत्योपदेष्टा, सबका हितैषी, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय हो उसे 'आचार्य या गुरु' कहते हैं ।

५- श्रीकृष्ण महाराज ने गीता के अ० १८, श्लोक ४२ में ब्राह्मण के लक्षण इस प्रकार किए हैं:—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।

अर्थात् अन्तःकरण तथा इन्द्रियों का निरोध, बाहर भीतर पवित्रता, क्षमा, हृदय की सरलता, वेद शास्त्र का ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता आदि जिसमें स्वभाव से हों, उसे 'ब्राह्मण' कहते है ।

६-जिसे सम्यक आत्म-ज्ञान हो, निकम्मा आलसी कभी न रहे, सुख-दुख, मानापमान, निन्दा-स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे धर्म ही में निश्चित रहे, जिसके मन को उत्तमोत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तुएं आकृष्ट न कर सकें, वह 'पण्डित' है ।

(विदुर प्रजागर')

ये हैं सच्चे साधुओं, पण्डितों, ब्राह्मणों, सतों, गुरुओ, आचार्यों और महात्माओं के लक्षण। ऐसे उत्तम गुण कर्म स्वभाव धारण करने वाले साधुओं महात्माओं, गुरुओं, ब्राह्मणों और पंडितों से ही आश्रमों एव तीर्थों का महत्व और उनका गौरव स्थिर रहता था। इन्हीं महापुरुषों के तप, त्याग. साधना और आदर्श जीवन से धम की रक्षा और अधर्म का विनाश होता रहता था।

दुर्भाग्य से सत्य विद्याओं में श्रम के लोप हो जाने और स्वार्थी एव धूर्तों की चालों से, धर्म का ह्रास हुआ, और धर्म 'आचरण का विषय' न रहा। बल्कि उलूलजलूल विश्वासों, अनर्गल व्रतों क्रियाकलापों, पतनकारी बाहरी आडम्बरों, छल-छद्म से परिपूर्ण चिह्नों का, ढोंगी स्वार्थियों द्वारा प्रचारित वेद शास्त्र के विरुद्ध एवं अप्रमाणित हानिकर मर्यादाओं का 'धर्म' विषय बन गया। सर्वत्र विकृति व्याप्त हो गई है। आधुनिक तीर्थ स्थान इस विकृति को पनपाते हैं।

गंगा स्नान से ही पाप नही धुलते।

दुर्भाग्य से हमारे अन्धविश्वासी भाई बहनों ने, प्राचीन काल में ऋषियों-मुनियों के प्रसिद्ध आश्रमों की ख्याति के आधार पर (जबकि वहाँ अब कोई ऋषि मुनि वास नही करते) काशी. मथुरा. बद्रीनाथ, जगन्नाथ, वाराणसी, हरिद्वार आदि के 'दर्शन' और स्थान मात्र' (ऋषि मुनियों से रहित मन्दिरों) को तीथ मान रखा है।

यात्री वहां से क्या धर्मोपदेश, क्या मन की शुद्धि और आत्मा की उन्नति का प्रसाद लायें हैं या नहीं भी ? इस को किसी चिन्ता ही नहीं। तीर्थों से वापसी पर बहुतों के व्यवहार, सदाचार, सत्याचरण, भगवदर्पण बुद्धि, भगवत्प्रीति, भक्ति का कोई प्रत्यक्ष चिह्न नहीं दीखता तो तीर्थ यात्रा का क्या लाभ ? बस ! सैर सपाटा, मौज बहार, पंच-विषयों की तृप्ति, और धर्मात्मापन का ढोंग हो गया।

'जीवन में काया-पलट लाने वाले महात्मा, वेद शास्त्रों के

विद्वान और तपस्वी तीर्थों पर विद्यमान न होने से, अब तो तीर्थों के कुछ पुजारियों, पडों, लोभी गुरुओं तथा अयोग्य ,नाममात्र के पण्डितों' ने इन तीर्थों का महत्व किसी न किसी कल्पित पुण्य के प्रलोभन के अन्तर्गत किया हुआ है । अब तीर्थों पर महात्मा नहीं रहे, तीर्थों के 'माहात्म्य मात्र रह गये । प्रत्येक तीर्थ के माहात्म्य की कथा बतला रही है कि 'अमुक तीर्थ वा गंगास्नान से वह फल होगा जो किसी 'सत्क्रिया' से नहीं हो सकता ।" पद्म पुराण में यमुना माहात्म्य है, उसमें लिखा है कि "सत्य-युग में 'तप, त्रेता में 'यज्ञ', द्वापर में 'पूजा' और कलियुग में 'यमुना स्नान' सब सुखों को देनेवाला है । व्रत, दान और तप से हरि इतने प्रसन्न नहीं होते जितना श्री यमुना-स्नान से प्रसन्न होते हैं ।"

गंगा के 'दर्शन' से एक सौ व गंगा-'जलपान' से तीन सौ जन्मों के, और गंगा स्नान से हजारों जन्मों के पाप, कलियुग में नष्ट होते हैं, जैसा कि निम्न में श्लोक दर्शाया है:—

दृष्ट्वा जन्मशत पापं पीत्वा जन्मशतत्रयम् ।
स्नात्वा जन्मसहस्राणि हरति गगा कलौ युगे ।।

क्या यह कल्पना मात्र नहीं ? क्या यह अन्धविश्वासियों को उल्लू बनाने सरीखा यत्न नहीं ? क्या ऐसा मानने से पापकर्म के दण्ड का भय न रह कर, पापियों को उद्दण्ढ न बना देगा ?

तीर्थों के जलों में स्नान अथवा उनके दर्शनों से पाप दूर नहीं होते । किए हुए कर्म का फल अवश्य मिलता है । पाप कर्म का फल दु:ख और पुण्य कर्म का फल सुख होता है । वास्तव में यही समझदारी की बात है । आप को ऐसा समझने में क्या आपत्ति है ?

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य

का कथन है कि ब्रह्म के उपासक के लिए सभी जल गगा जल हैं, सभी स्थल वाराणसी हैं ।

सच्ची शुद्धि

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।।
मनु० अ ५ श्लोक १०९

जल से केवल शरीर शुद्ध होता है। मन सत्य से शुद्ध होता है। आत्मा विद्या और तप से, तथा बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ।।

विद्वान लोग क्षांति (क्षमा) से शुद्ध होते, 'अनुचित कर्मों के करने वाले दुष्कर्म त्याग कर दान देने (अनाथ दीन वा सुपात्र वा विद्वानों को अन्न धन देने से) शुद्ध होते हैं। छिप कर किये पाप जप से शुद्ध होते हैं। वेदज्ञ जन तप से शुद्ध होते हैं।

हमारे ऋषि मुनि आश्रमों में हवन, यज्ञ, यम, नियम के पालन और योगाभ्यास आदि में नाना प्रकार के कष्ट उठाते थे। तीर्थों के स्नान वा दर्शन मात्र से मोक्ष मिल जाता तो वे ये कष्ट क्यों उठाते ?

भगवान् राम ने रामायण में कहा कि 'वेदोक्त कर्म धर्म करने से मोक्ष मिलता है।' एकमात्र नदियों में, चाहे उनका जल कितना शुद्ध और स्वास्थ्य कारी क्यों न हो, स्नान करने से ही यदि मुक्ति प्राप्त होती तो राम यह उपदेश क्यों करते ?

पुराण भी पुकार २ कर कह रहे हैं कि चाहे पर्वत के बराबर मिट्टी मले और गंगा के सारे जल से मृत्युपर्यन्त स्नान करता रहे, तब भी दुष्ट विचार वाला व्यक्ति शुद्ध नहीं हो सकता:—

गंगातोयेन कृत्स्नेन मृद्भारैश्च नगोपमैः ।
आमृतेः स्नानकश्चैव भावदुष्टो न शुध्यति ।।

देवी भागवत स्कन्ध ४, अ० ८, श्लोक २८ से ३४ तक में लिखा है "जिसका मन शुद्ध उसे पग पग पर तीर्थ हैं मलिन चित्त को गंगा कुछ नहीं कर सकतीं।"

कहा जाता है कि गंगादि में स्नान करने के परिणाम स्वरूप शरीर त्याग के पश्चात् मुक्ति होती है यदि यह बात सत्य हैं तो गंगादि में नित्य या बहुधा स्नान करने वालों में जीवन-मुक्ति के लक्षण प्रत्यक्ष होने चाहिए, अर्थात वे लोग राग, द्वेष, लोभ, मोह आदि दोषों से बचे होते। दुष्टवासना रूप 'पाप' का शोधन तप अर्थात् पञ्चइन्द्रियों के संयम धर्म परायणता और परोपकार के लिये शरीर का कष्ट सहन करने से होता है, अन्य किसी उपाय से नहीं।

तीर्थों की दुर्दशा

आज हरिद्वार, प्रयाग, मथुरा, नासिक, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थस्थानों पर ऋषि-मुनियों के आश्रम कहाँ हैं ? जिन्होंने अपने ज्ञान से संसार को प्रकाशित और आचार से सुवासित-सुगन्धित किया था। जिनकी ज्ञान-गंगा में स्नान करते हुए लोग अघाते न थे। तीर्थस्थानों की वर्तमान दुर्दशा का वर्णन करते हुए लेखनी कांपती है। तीर्थों पर पुरातन ऋषि काल के यज्ञ-धूम्र के अभाव में आजकल चरस गांजे बीड़ी का विषाक्त धूम्र व्याप्त रहता है। जहां वेदोक्त सत्योपदेश से आत्मिक-उन्नति होती थी वहां अब अधिकतर संसारी स्वार्थी, नानारूप बनाकर अनेक प्रकार की ठग विद्या फैला रहे हैं। जहां वेद का मधुर गान होता था, अब वहां सिनेमाओं ट्रांसिस्टरों, रेडियो के इश्किया गाने विद्यमान हैं। जहां विशुद्ध वातावरण में वासनाएं स्वतः दब जाती थीं, वहां अब वासनाओं की उत्तेजना की सामग्री बहुत पाई जाती हैं। आप ही बतायें कि पूज्य गंगा सभा के पुरातन म्युनिसिपल सदस्यों ने हरिद्वार की पुण्य नगरी में ३ सिनेमाओं को इजाजत क्यों दी थी ? क्या ये कामनाओं, विषय वासना और उत्तेजना के साधन नहीं ? इस रंगीले सुरीले कामुकता भरे प्रचार के मुकाबले में हमारे पण्डों, पूज्य महन्तों धर्मनिष्ठ कथावाचकों के उपदेश का, इतने व्यापक खारी समुद्र में मधु बिन्दु से अधिक प्रभाव नहीं हो सकता। कलियुग बेचारा तो यों बदनाम।

हमारे तीर्थों के कर्णधारों से ही ऐसी भूल हो जाती रही हैं कि धर्म की ओर भक्ति-भाव की जड़ें ही उखड़ी जा रही हैं। तीर्थों पर धर्म भक्त बनाये नहीं जाते, अपितु भक्तजन तो नगरों से बने बनाये चले आते हैं और तीर्थों पर आकर कुछ निराश ही लौटते हैं, कई तीर्थ स्थानों पर जो दुष्कृत्य होते हैं, और बेशर्मी और मूर्खता के जो चित्र देखने में आते हैं ईसाई-मुसलमान विधर्मी और विदेशी जन (हमारे देश, धर्म और संस्कृति को बदनाम करने को) उन चित्रों का खुलकर उपयोग करते हैं। कहीं बिल्कुल नंगे नांगों के जुलूसों का, कहीं नंगी स्त्रियों के स्नान का, कहीं साधुओं की लड़ाई का, स्नानान्तर गीली पतली धोतियों में अर्धनग्न स्त्रियों के फोटों खींचते हैं और अखबारो में छपवाते हैं। जिनके परिणाम स्वरूप शिष्ट और समझदार देशवासियों के मस्तक लज्जा से झुक जाते हैं।

जगन्नाथपुरी के सनातन मन्दिर की 'दीवारों से लेकर उसके कलश तक के पत्थरों पर चित्रित' स्त्री पुरुषों के नग्न, काम-क्रीड़ा करते चित्र देखकर हमारी पुत्रियां और बहुएं शर्म के मारे आंखें बन्द कर लेती हैं। विदेशों में हमारे धर्म की खिल्ली उड़ाने को ये चित्र बुरी तरह प्रदर्शित किये जाते हैं। पुरी के मन्दिर को देखकर पाकिस्तानी मुसलमान कवि ने हिंदुओं को अपने निम्न शेर में लज्जित किया है--

खिलवते-खास में जिस बात में आती है हया।
बर-सरे-आम दिखाते हैं पुरी के मन्दिर॥

भाव यह है कि स्त्री-पुरुष रात के अँधेरे में जिस काम-क्रीड़ा पर लज्जा अनुभव करते हैं कि हाय उन्हें कोई इस नग्न अवस्था में न देख ले; वही कुछ प्रदर्शनी रूप में पुरी के मन्दिर, दिन की रोशनी में नानाविध काम-क्रीड़ा के सैकड़ों चित्रों में प्रदर्शित करते हैं।

एक पाकिस्तानी कवि का हिंदुओं की बाबत ऐसा लज्जास्पद विचार वहां ले जाना हमारे लिये डूब मरने का मुकाम है। जहाँ-जहाँ जिस-जिस धर्माधिकारी से आपकी भेंट हो, उन्हें भूल सुधार के लिये प्रेरणा देनी चाहिये। नग्न अश्लील चित्र पत्थर की दीवारों से छीले जा सकते हैं। यदि सरकार इस

कलंक को धोना चाहे तो धर्म में हस्तक्षेप कहा जायेगा। हां, कोई यह प्रश्न लोक सभा में उठा दे तो बहु पक्ष से ये चित्र छीले जाना और उनके स्थान में वैदिक ऋषियों मुनियों, राम, कृष्ण, लक्ष्मी, सरस्वती आदि के चित्रों से अथवा वेद भगवान उपनिषद् आदि की सूक्तियों से सुशोभित किये जाना राज्य-नियम से पास भी हो सकता है।

तीर्थों-मन्दिरों की दुर्दशा के लिये जिम्मेदार कौन ?

(१) विद्या तप और धर्म से कोरे, विद्वता का ढोंग रचाने वाले, धन के लोभी और विषय के विलासी ठग हैं, जो भोले-भाले स्त्री-पुरुषों को नाना प्रकार ढोगों, स्वांगों, से भरमाते हैं, अपने स्वार्थ में उनके धन और चरित्र का अपहरण करते हैं। कई एजेन्ट नगर-नगर जा, उनकी करामातों (चमत्कारों) का प्रापेगंडा कर शिकार फांसते हैं। भावुक स्त्रियाँ अधिक प्रभावित होती हैं।

(२) तीर्थों की दुर्दशा के लिये बहुत कुछ स्वर्ग-प्राप्ति के लिये यात्राओं और दान की अशुद्ध भावनायें जिम्मेवार हैं साथ ही अमुक-अमुक तीर्थ पर जाकर अमुक-अमुक मनौती करने में दुःखों का छुटकारा बताना।

मनौती वाले का भी तो नानाविध यत्न उस दुःख के निवारण के लिये साथ के साथ होता रहता है। परन्तु वह दुःख दूर होने पर, सारा श्रेय तीर्थों के पुजारी जी अपने तीथ और देवी देवताओं को देकर यात्री का अपमानपूर्वक धन अपहरण करके उसे खून के आंसू रुलाते हैं।

गुरु धारण

तीर्थ स्थानों पर जाकर गुरुधारणा की प्रथा भेड़ चाल के रूप में बहुत प्रचलित हो रही है या यों समझो कि प्रचलित की जा रही है। "घर का जोगी जोगड़ा, आन गांव का सिद्ध" की प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार अपने नगर और अपने जिला के देखे भाले चरित्रवान की अवहेलना करके, दूर के अपरिचित व्यक्ति को ऐसा मान देना बहुत बार कष्टकर और धनहर प्रमाणित होता है। सम्पन्न पुरुषों की पत्नियों, पुत्रियों, बहुओं के पास पड़े धन का बहुत बार यों अपव्यय होता है। वे किसी के दो-चार मीठे बोल सुनकर, दो-चार बार नम्रता का व्यवहार देखकर मुग्ध हो जाती हैं। दलालों, दलालिनों का दांव

.ल जाता है। आर्य समाज में तो पति, पिता, पुत्र की सम्मति के बिना स्त्रियों को गुरुधारण करना मना है। आर्यसमाज के लोग तो आचार, विचार व्यवहार एवं धर्म परायण जीवन की तसल्ली के बिना स्त्रियों को परपुरुष से खड़े-खड़े भी बात करने से मनाकर छोड़ते हैं।

धर्मशास्त्र ने धर्मज्ञता, विद्यादान, सदाचार, त्यागपूर्वक शुद्धाचरण, धर्म-कार्य में संलग्नता के गुणों को ही दान की सुपात्रता की कसौटी माना है। धर्म-शास्त्र कुपात्र और अनधिकारी को सम्मान अथवा दान देने में बड़ा पाप मानता है।

धर्म और धर्मात्मा के लक्षण

(१) मनुस्मृति में धैर्य, क्षमा, चित्त को अधर्म से हटाना, चोरी का त्याग, बाहरी भीतरी शुद्धि, इन्द्रिय दमन, शुद्ध बुद्धि, विशुद्ध ज्ञान, सत्य, अक्रोध ये दस धर्म के लक्षण वताये हैं :–

धृतिः, क्षमा, दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीः, विद्या, सत्यम्, अक्रोधो दशक धर्म लक्षणम्।

जो धर्म के लक्षण, सो ही धर्मात्मा के लक्षण।

(२) 'वेद, स्मृति,' सत्पुरुषों का आदेश, सदाचार, अपनी पवित्र आत्मा की पसन्द (जैसा प्रिय व्यवहार अपने प्रति चाहो, वैसा दूसरों के प्रति करो।) इन चार से धर्म का निश्चय होता है। इन नियमों पर चलने से ही मनुष्य को स्वर्ग और परम पद प्राप्त होता है।

शास्त्र में यह भी कहा है कि जो माता-पिता की तन-मन-धन से एवं मधुर वचन, आज्ञा पालन द्वारा सेवा करता है, वह धर्म (कर्तव्य) परायण व्यक्ति है।

(३) तीसरी कसौटी–जिस कार्य में कुछ भी भय, लज्जा अथवा शंका हो, वह धर्म के विपरीत है।

(४) चौथी कसौटी–जिस 'वचन, विचार अथवा कर्म' में प्रेम, सत्य और त्याग तीनों विद्यमान हों, उसको धर्मानुकूल समझो, अन्यथा अधर्म और पाप। यथा द्वेष भाव से कहा हुआ सत्य पाप है।

(५) पांचवीं कसौटी–धर्म, सत्य और भगवान तीनों एक साथ रहते हैं, किसी एक के बिना बाकी दो नहीं रह सकते यह समझाने को एक दृष्टांत:– जिनकी कमाई सत्य और धर्मानुसार नहीं, वे न भगवान को अपने मन में धारण कर सकते हैं, न कष्ट में उससे कोई आशा ही रख सकते हैं, यदि रखते हैं तो अपने को धोखा देते हैं।

सच्चा स्वर्ग

वेदानुकूल शुभ कर्म, सदाचार, प्रभुभक्ति आदि सद्‌गुणों के फलस्वरूप मोक्ष प्राप्त करने का ही नाम वैकुण्ठ है, उसके विरुद्ध नरक। दुःख-सुख मनुष्य को अपने कर्मों से मिलता है। स्वर्ग-नरक कोई विशेष स्थान नहीं हैं। परम सुख का नाम स्वर्ग और दुःख विशेष का नाम नरक है, जो कर्मानुसार प्राप्त होता है।

सच्चा जाप

जैसे परमेश्वर 'सत्य स्वरूप' है, उने 'सत्य' प्रिय है। योग्य हैं कि किसी भी काल में सत्य को हाथ से न जाने दें, यही सच्चा जप है। ऐसा सत्कर्मी ही नियम से अपने इष्ट ओ३म् (ईश्वर के निज नाम) का स्मरण करे, तभी जाप कहलाता है।

ऋषि मुनियों, वेद के रिसर्च स्कालरों, धर्माचार्यों का विश्वास है कि वेद का सार गायत्री है। वेद में ही इसे वेद माता कहा गया है–"ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम। आयुं प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥" अर्थात् मैंने वेदमाता गायत्री का अर्थ विचारकर जाप किया है जो सब शुभेच्छाओं को पूरा करने वाली, शुभ प्रेरणाएं देने वाली, सत्य धर्म का आश्रय लेने वालों को पवित्र करने वाली है। वही आयु, बल पराक्रम, सन्तानों (एवं शिष्यों और आधीन प्रजाओं, सेवकों), अश्व गौ आदि पशुओं, अमिट यश, उपकार में काम आने वाले धन और ब्रह्मतेज को प्रदान करती हुई, मुझे ब्रह्मलोक में प्रविष्ट कराने वाली है, एवं प्राप्त कराये।

"सीताराम, सीताराम, राधेश्याम, राधेश्याम, नमः नमः शिवाय, नमः

शिवाय" आदि जाप, रटने के और गिनती के विषय नहीं। जिनका जाप करते हो, उनके श्रेष्ठ गुणों, महानताओं को ध्यान में लाकर, उनकी आज्ञाओं का पालन करने का संकल्प लेकर, ब्रह्मवर्चस का अधिकारी बनकर, जो कोई सिमरन करता है, उसी का सिमरन फलीभूत होता हैं। जो भावुक स्त्री पुरुष "मैं पापी, मैं पापी" कहते हैं और आंसू बहाते हैं, परन्तु अपने जीवन में कुछ सुधार नहीं लाते, उनके जाप पर भगवान् कोई ध्यान नहीं देते। जाप यदि आपके जीवन में उत्तमता नहीं लाता तो समझो कि जाप और जीवन व्यर्थ गये।

सच्चा तप

तैत्तिरीय उपनिषद में कहा गया है कि शुद्ध भाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोकना अर्थात् शरीर, मन और इन्द्रियों को बश में रखना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना, वेदानुसार आचरण करना, योगाभ्यास, विचारपूर्वक उत्तम दान और परोपकार आदि शुभ कार्यों का नाम तप है।

सच्चा व्रत

किसी विशेष दिन अन्न जल के त्याग का नाम व्रत धरा गया है। भोली भाली जनता व्रतों के चक्कर में फंसकर 'सत्कर्मों, सत्प्रयत्नों और पुरुषार्थ से विमुख रहकर अपना अहित कर लेती हैं। निर्धन पुरुष 'सत्पुरुषार्थ को छोड़ कर' एकादशी मंगल आदि के व्रत करते हैं। पति की आयु एवं सुख की प्राप्ति दुःख के विनाशार्थ पत्नियां व्रत करती हैं। सन्तानहीन 'सन्तानोत्पत्ति का उचित उपचार किये बिना, सन्तान प्राप्ति के लिए, स्त्रियां पति की दीर्घायु के लिये, अथवा अपना सुहाग बनाये रखने के लिये पति को अपने व्यवहार से प्रसन्न किये बिना, पति को वश में रखने के लिये भेड़चाल में फसकर 'व्रतों का आश्रय लेती हैं। मन चाहा फल तो इतना मात्र करने से (व्रतों से) मिलता नहीं, उल्टे स्वास्थ्य, धन और धर्म का नाश हो जाता हैं।

व्रत का अर्थ है कोई शुभ गुण धारण या नियम पालन का संकल्प, वेदादि धर्म शास्त्रों का पठन-पाठन और उनकी शिक्षाओं के अनुसार कुकर्म

त्यागने, सुकर्म करने का 'दृढ़ निश्चय ही व्रत' कहलाता है, मन और शरीर की स्वस्थता के लिए सप्ताह मे एक दिन भूखा रहने का (संकल्प) व्रत हितकर है।

सच्चा दान

दान देना शुभ कर्म है परन्तु दान सुपात्र और निर्धन को देना चाहिए। भरे पेट कुपात्रों, स्वस्थ भिखारियों को न देना चाहिए।

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन्।
तथा निमज्जतोऽधस्तावज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥

जिस प्रकार पत्थर की नाव पर चढ़कर मनुष्य जल में डूब जाता है इसी प्रकार मूर्ख दान-दाता तथा अनधिकारी दान-प्रतिग्रहीता दोनों नरक में गिरते हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि न्यायपूर्वक संचित किये हुए धन को विधिवत् श्रद्धा करके 'दरिद्रों' को समर्पण करना दान है।

'दरिद्र' वे हैं जो अंग-हीन हैं, असाध्य रोग में ग्रस्त हैं, अनाथ हैं, विधवाएं हैं, असहाय हैं, वा ऐसे सत्पुरुष जो समय के हेर-फेर से कङ्गाल हो गये हैं परन्तु याचना करते सकुचाते हैं। दोनों की रक्षा करना 'धर्म' है, और मोटे–ताजे अकर्मण्य, असाधु, अपण्डित को दान देना, कुकर्म में सहायक बनना, 'अधर्म' है।

दान की विशेष दुर्दशा

कुपात्र को दान देने में पाप लगता है, सुपात्र को देने में पुण्य है। लोग भावुकता, उदारता या मूर्खता में इस मूल तत्व को भूल जाते हैं।

दान की अव्यवस्था से अकर्मण्य भिखारियों, कुकर्मियों की संख्या बढ़ती जाती है। कुरुक्षेत्र गंगादि तीर्थों पर कभी २ दानी लोग पण्डों, पुरोहितों को अपनी स्त्रियों तक का दान करते हैं। ऐसे लेने वाले और देने वाले–दोनों की बेहयाई (निर्लज्जता) की यह हद (पराकाष्ठा) है।

इस प्रकार की पतनकारी दान-प्रथा का त्याग कर येने में ही कल्याण है। ये विषयी और लालची लोगों ने चलाये हैं ताकि यजमान को पत्नी लौटाने में पुरोहित को मुंह मांगा पैसा मिले।

मोक्ष (मुक्ति), जन्म मरण से छुटकारा

अविद्या और अज्ञान से छूटना ही मुक्ति है। "न ऋते ज्ञानान्मुक्ति।" आत्म-ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है। अन्यथा नहीं।

भगवान राम ने वेदोक्त कर्म धर्म करने से मोक्ष प्राप्ति कही है। (रामायण)। धर्मवीर, दानवीर, शूरवीर, कर्मवीर, (निस्स्वार्थ सेवा कार्य में लगे रहने वाले) परमपद मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

ईसाई मत में मोक्ष सदगुणों पर निर्भर नहीं। वेदानुसार 'मनुष्य का आत्मा मूलरूप में शुद्ध पवित्र है और केवल विषय वासनाओं, प्रलोभनों के संग दोष से उस पर पाप के आवरण उसे मलिन कर देते हैं, परन्तु सत्संग, स्वाध्याय, शुभ कर्म और ईश्वर भक्ति से उसके सब मल विक्षेप आवरण दूर होकर वह पुनः शुद्ध पवित्र होकर मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है। ईसाई मतानुसार 'मनुष्य जन्मता ही पापी है। वह स्वभाव से ही पापात्मा है। वह पापी ही मरता है, उसे कोई उपाय पापमुक्त नहीं कर सकता। पाप से मुक्त करके मोक्ष पद दिलाने को केवल ईसा मसीह को भगवान के आगे सिफारिश एक मात्र उपाय है। ईसाई चाहे कितना ही बुरा हो वह स्वर्ग सुख (मोक्ष) का अधिकारी है। जो ईसाई धर्म को ग्रहण नहीं करता, वह चाहे कितना ही अच्छा हो उसे नरक में खुदा (भगवान) धकेल देगा।

वैदिक धर्मियों का गुरुमन्त्र—गायत्री

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य
धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

यह गायत्री मन्त्र सनातनी, आर्य, द्वैतवादी, अद्वैतवादी, वेदान्ती कहलाने वाले सभी वैदिक धर्मी हिन्दुओं को (स्त्री पुरुष, बाल युवा वृद्ध तथा चारों वर्णों ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शिल्पकार शूद्र कहलाने वालों, ईश्वर में तथा ईश्वर की सब 'जड़ चेतन' में सत्ता देखने और मानने वालों को, यह वेदमन्त्र याद होना चाहिए। वेद में इस मन्त्र को वेद माता कहा गया। इसका अर्थ विचार कर जप करते रहना चाहिये।

गायत्री मन्त्र का अर्थ :—ओ३म् (रक्षक परमात्मा) ही सर्वसृष्टि का

आधार, प्राणों का प्राण, सर्व दुःखनाशक, सर्व सुखदाता, जगत मात्र की उन्नति के मार्ग में प्रेरणा देने वाला, एकमात्र वरने योग्य (जैसे कन्या पति को वरती, एक मात्र उसी की हो रहती), वही परमात्मा हमारा एकमात्र ध्येय, सूर्य का निर्माता, सूर्य समान हमारी मति को तेजस्वी बनाता, विवेक-तेज की उग्रता से सब पापों को दग्ध करता—जला डालता है, वह देवों का परमदेव (दाताओं का दाता, परम दाता), वही हमारी बुद्धि को शुभ मार्ग में, धर्म मार्ग में, जीवन को सफल बनाने के मार्ग में) चलाये।

गायत्री माता हमें वह सब कुछ प्रदान करती है, जो गायत्री का जप करने वाले को प्रदान करने का वर, पीछे 'सच्चा जाप, के वर्णन में प्राप्त कराने का आश्वासन, वेद भगवान ने दिया है। अमरीका के सर्व धर्म सम्मेलन में गायत्री को सर्वोत्तम प्रार्थना माना गया। ×

हम सब वैदिक धर्मी हैं। हमें जानना चाहिये कि:—

१—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, जो ईश्वर ने सृष्टि के आदि में मनुष्यों को उनके पथ-प्रदर्शन और ज्ञानार्थ प्रदान किया। वेद को पढ़ने का अधिकार, बिना भेदभाव के, संसार के सब वर्णों, सब जातियों एवं सब देशों के स्त्री-पुरुषों को भगवान ने दिया है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, सर्वव्यापक अनादि, सृष्टिकर्ता, निराकार आदि गुण युक्त तथा मनुष्य मात्र का उपास्य देव है। एक-मात्र उसी की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, पूजा करनी चाहिये, जैसे जैसे ऋषि मुनि, राम, कृष्णादि करते थे।

३—वेदों में ईश्वर का नाम ओ३म (परम रक्षक), भूः (सबका प्राणाधार), भुवः (सर्व दुःखनाशक), स्वः (सर्व सुखदाता) एवं माता, पिता, बन्धु, इन्द्र आदि कई प्रकार से आया है।

× पढ़े श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज द्वारा रचित "महामन्त्र" तथा श्रीमहात्मा प्रभु आश्रित जी द्वारा रचित "गायत्री रहस्य" पता—लाला गोबिन्दराम हासानन्द, बुकसेलर, नई सड़क, दिल्ली।

जड़ पदार्थों—अग्नि, सूर्य, वायु, पृथ्वी, जल, भूमि, पीपल आदि के गुणानुसार भी ईश्वर की सत्ता महत्ता समझाने को वेद में ईश्वर का नाम अग्नि, सूर्य आदि आया है। इससे भ्रम पैदा होकर जड़ पदार्थों की पूजा भी कोई-कोई करने लगे। यह मान्य नहीं।

४—ईश्वर निराकार और सर्वव्यापक है। उसकी मूर्ति नहीं हो सकती। ईश्वर के स्थान में देवी देवताओं की कल्पित मूर्तियों की पूजा वेदानुकूल नहीं, मूर्ति में भक्ति भावना की युक्ति ठीक नहीं। 'भावना' का सीधे ही ईश्वर में होना भक्त को सरलता से, सुगमता से और शीघ्रता से ईश्वर दर्शन प्राप्त कराता है। अच्छा, यह बतायें कि मानो आप श्री राम जी अथवा श्रीकृष्ण जी की (जो परमेश्वर के अवतार कहलाते हैं) पूजा करते हैं, तो बताओ श्रीराम व भगवान् कृष्ण जी से पहले के लोग, या आदि सृष्टि से ही लोग किसको पूजते और किस का जाप किया करते थे? (उत्तर) ओ३म् और गायत्री का।

५—जीव ब्रह्म से भिन्न है। अद्वैतवादियों का 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूं) कहना युक्तियुक्त नहीं। यदि हमीं ब्रह्म हैं, तो पूजन किस का? प्रार्थना किसके आगे? दुःख में फिर आश्रय किसका?

६—हरिद्वार आदि को सत्संग के लिए जाना तो ठीक है, परन्तु "गंगा, यमुना आदि में स्नानमात्र, हमें पापों के फल भोगने से छुड़ा सकते हैं", ऐसा मानना तो विवेकी श्रीमानों को योग्य नहीं। अच्छे कर्मों से सुख और बुरे कर्मों से दुःख भोगना अवश्यम्भावी हैं। सो शुभ कर्म और प्रार्थना उपासना पर बल दिया जाय जिससे परमात्मा के न्याय और दया दोनों महान् गुणों से लाभान्वित होने की इच्छावाला, सुकर्म करता रहे, पापों से बचता रहे।

७—मन्दिर जाकर घंटा बजा दिया, पैसा चढ़ा दिया, चरणामृत ले लिया,' इससे कुछ नहीं बनता। यदि वहां जाकर बैठे नहीं, उपदेश नहीं सुना, जीवन में और कमाई में पवित्रता नहीं लाई, व्यवहार में सत्य और मधुरता नहीं लाई तो मन्दिर जाने के लाभ से वंचित रहे।

८—सूर्य-ग्रहण तथा चन्द्र-ग्रहण घूमती हुई पृथ्वी की छाया हैं, यह भूगोल विद्या पढ़े-लिखे जानते हैं। उन्हें राहु केतु से ग्रसा जाना मानना ठीक नहीं।

ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों, नदियों पर जाकर स्नान करने में पुण्य मानना अन्धविश्वास है। श्रीमानों को अब अन्ध-परम्परा से ऊंचा उठना योग्य है।

९-ईश्वर निराकार है और सर्वव्यापी है। वह नस, नाड़ी, शोक, हर्ष, काल और कर्म के बन्धन से रहित है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीं रामचन्द्र तथा योगिराज श्रीकृष्ण की आर्य समाज में उतनी ही मान्यता है, जितनी उन दोनों के लिए अन्य किसी रामभक्त या कृष्ण भक्त की हो सकती हैं। रामनवमी तथा कृष्ण-जन्माष्टमी पर्व आर्यसमाजों में पूर्ण उत्साहपूर्वक मनाए जाते हैं। वैदिक धर्म के आधार पर सनातन धर्म और आर्यसमाज अत्यन्त निकट एवं सहधर्मी हैं। जरा सा मतभेद आर्यसमाज की इस मान्यता के कारण है कि ईश्वर निराकार है, सर्वव्यापी अजन्मा, शोक हर्ष काल और कर्म के बन्धन से रहित है। अतः पंचभौतिक शरीर में जन्म पाने और मरने से पुरुषोत्तम राम तथा योगिराज कृष्ण महापुरुष थे, ईश्वर न थे। आर्य जगत् जैसा सम्मान अपने आचार्य महर्षि दयानन्द का करता है, वैसा ही मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगिराज कृष्ण आदि महान विभूतियों का भी करता है। महर्षि दयानन्द भी उनका सम्मान करते थे।

१०-ईश्वर कर्मों का फलदाता है, और उसके न्याय नियम से कर्मों का फल' अवश्य मिलता है। कोई ईश्वर का अवतार, 'खुदा का पैगम्बर' या 'खुदा का बेटा' दुष्कर्मों के फल-भोग से अपने किसी अन्यायी को बचा नहीं सकता। ऐसा मानना कि 'दुष्कर्मियों के पाप वे क्षमा कर सकते हैं या खुदा से करा सकते हैं' पाप को बढ़ावा देना है। पापों से छुटकारा तो शुभ कर्मी बनने से ही मिलता है। शुभकर्मी मनुष्य को सब प्रकार की प्रार्थनाओं को पूरा करने की सामर्थ्य ईश्वर में है, जो वह स्वभाव से करता है, न कि सिफारिश से।

११-ईसाई मत और मुसलमानी मत दो सिफारिशी मत हैं। इन्होंने खुदा (भगवान) को खुले बन्दों पक्षपाती मान कर अपने-अपने मत को गौरव-हीन बना दिया है। इन मजहबों के प्रवर्तक बड़ा पौलिटीकल दिमाग रखते थे। वे लीडर टाईप के व्यक्ति थे। वे अपने काल की जनता से कुछ अंशों में

अधिक भले भी थे, और तब के प्रचलित धर्मों को ठीक भी न मानते थे। वह अन्ध विश्वास का युग था। वे अपनी लीडरी तभी चमका सकते, और अपने पीछे चलने वाले अनुयाई तभी इकट्ठे कर सकते थे जब अपने में कोई विशेष महानता बतलाते।

यथा ईसाई मत के प्रवर्तक ईसा (यशु मसीह) ने प्रचार किया—"मैं खुदा का इकलौता बेटा हूं। प्रत्येक मनुष्य जो मुझ पर ईमान लाएगा (मुझे अपना गुरु मानेगा), उसे मेरी सिफारिश पर मेरा बाप (खुदा) मरणोपरांत, कयामत के दिन स्वर्ग में भेजेगा, चाहे वह मनुष्य कितना ही पापी हो, परन्तु जो मुझ पर ईमान न लाएगा अर्थात् जो ईसाई न होगा उसे नरक की अग्नि में धकेल देगा, चाहे वह मनुष्य अपने जीवन में कितना ही श्रेष्ठ और शुभ कर्मी रहा हो।" (पूछिये किसी ईसाई से, क्या उनके धर्म में ऐसा ही माना जाता है ? वह कोई किन्तु परन्तु करे, तो उसे कहें कि इस प्रश्न का हां या नहीं में सीधा उत्तर दो।) इस प्रकार के अन्याय कारी ईसाईयों के खुदा, और अन्याय पर आधारित मत के विषय में, क्या टीका टिप्पणी की जाए ? वैदिक धर्म के सामने ऐसे मत की क्या औकात है ?

(प्रश्न) परन्तु क्या हम भारत में ईसाई मत को बहुत फैलता हुआ किसी अन्य कारण से देख रहे हैं ? (उत्तर) अमेरिका, योरोप के ईसाई-देशों के पोलिटीकल और दान के फंडों से भारत के मिशनरियों को प्रचुर मात्रा में धन प्राप्त होता है। वे 'गरीब भारत' की अपेक्षा अधिक अच्छे डाक्टरों, टीचरों, प्रोफेसरों, प्रबन्धकों, सेवकों, बिल्डिंगों द्वारा सबको अधिक आकर्षित करते हैं और उन संस्थाओं के द्वारा ईसाई मत का प्रचार करते हैं। यदि कोई ईसाई मत धारण न भी करें, तो भी ईसाई मत के कतिपय रोचक प्रकरणों के प्रचार तथा हमारे मत और हमारी संस्कृति के कई प्रकरणों (यथा पुराणों, कृष्ण की बाललीला) को बुरी तरह पेश करके रोगियों और विद्यार्थियों को हिन्दु, जैन, सिख आदि भी तो नहीं रहने दिया जाता।

१२–स्वर्ग नरक कोई विशेष स्थान नहीं हैं। सुख का नाम है स्वर्ग, और दुःख का नाम नरक है। स्वर्ग नरक इसी संसार में तथा इसी शरीर में

भोगे जाते हैं। दरिद्रता, ऋण, रोग, क्रोध, विषय-विलासिता, परिवार आदि में कलह, मुकद्दमा, बेरोजगारी, सन्तान आदि की माता-पिता, गुरुजनों से विमुखता निरादर ये नरक हैं। धर्मपरायणता, सुख, स्वास्थ्य, सम्मान, ऐश्वर्य, अच्छे पति-पत्नी, माता-पिता, सन्तान आदि सम्बन्धियों' का होना तथा शुभ कर्म में रुचि होना, ईश्वर की भक्ति, प्रीति आदि स्वर्ग हैं। चोर बाजारी. मिलावट, दाम बढ़ाने के लिए अनाज चीनी आदि दबा रखना, यह बनिये का जाति-धर्म अथवा 'व्यापार' नहीं, अपितु नरक द्वार है।

पुण्य, दान, ईश्वरोपासना, स्वाध्याय, सत्संग, सदाचार, माता-पिता-गुरुजनों तथा दीन-दुःखी और अतिथि की सेवा, 'मांस-मदिरा और विषय विलासिता' का त्याग, देवकर्म हैं।

१२—वेदानुसार, यह मनुष्य जन्म 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' इन चार की सिद्धि से ही सफल माना जाता है। १. शरीर आत्मा के प्रति, परिवार के प्रति, देशजाति प्राणिमात्र के प्रति, तथा परमपिता परमेश्वर के प्रति कर्तव्यों का पालन करना धर्म है। 'ईश्वर-स्तुति प्रार्थना, स्वाध्याय, भजन कीर्तन, दान' तो धर्म माने ही जाते हैं। परन्तु ऊपर लिखे सबके प्रति प्रेम, सत्य, न्याय, सद्-व्यवहार और सेवा के भाव को भी 'धर्म' का दर्जा दें। २. अर्थ=धन। धर्म से दूसरे दर्जे पर अर्थ लिखा है। भाव यह है कि सत्य न्याय पूर्वक 'अर्थ' का संचय किया जाये। वयं स्याम पतयो रयीणाम्। ३. काम=सुख भोग। यह तीसरे दर्जे पर आया है। अर्थात् धर्मपूर्वक कमाये हुये धन का उपभोग (सुख-भोग) भी योग्य है यदि इसमें पाप नहीं घुसा है। ४. मोक्ष=ऊपर लिखे धर्मादि के फलस्वरूप, जन्म मरण से छुटकारा पाकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति, प्रकृति के दर्शनों से छूटकर प्रभुदर्शन की प्राप्ति।

१४——माता-पिता और आचार्य तीन गुरु होते हैं। जीवित मात-पिता और गुरुजनों की तत्परता से आज्ञा पालन श्रद्धापूर्वक सेवा करना ही श्राद्ध है। मृत पितरों के नाम पर श्राद्ध करना वेद विरुद्ध और निष्फल है। 'सुमति और सत्संग' का लाभ प्रदान कराने वाले सदाचारी निःस्वार्थ विद्वान् ब्राह्मणों की की सेवा-आतिथ्य पुण्य हैं। श्राद्ध के 'विशेष दिन' ब्राह्मण को खिलाया हुआ

पदार्थ मृत माता-पिता आदि को जा पहुँचेगा, ऐसा मानना अज्ञानता और अन्ध विश्वास मात्र है इस कटु सत्य के लिए क्षमा करना। वेद में 'श्राद्ध' प्रतिपादन कोई नहीं दिखा सका। वेद में 'श्राद्ध' शब्द ही नहीं।

और भी देखो। जीते जी तो बड़ों का जी जलाते रहने वाले निर्लज्ज भी दिखावे को, उनका श्राद्ध करने की धृष्टता करते हैं।

१५–वर्ण व्यवस्था 'गुण कर्म स्वभाव, से है। ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य यदि धर्म, आचार और विद्या विहीन हो, तो उसका शूद्र वर्ण हो जाता है। जन्म से न कोई शूद्र है, न ब्राह्मण है। कर्म से ही वैदिक वर्ण व्यवस्था मानने योग्य है। धर्मोपदेश और ब्राह्मण के कर्म में संलग्न 'जन्म का ब्राह्मण' सर्व श्रेष्ठ है।

१६–ईसाई और मुसलमानों के धर्म में पुनर्जन्म नहीं माना जाता है। धर्म चर्चाओं में वे इसी सिद्धांत के कारण सदा हार जाते हैं क्योंकि उनके पास इस प्रश्न का कोई युक्ति-युक्त उत्तर नहीं, कि 'क्यों कोई अंगहीन, लूला, लंगड़ा, अस्वस्थ, या दरिद्र के घर पैदा होता है; अथवा कोई सुन्दर, स्वस्थ जन्मता है, एवं धनी घराने में।' केवल वैदिक (हिन्दू, आर्य सिख) धर्म में इसका उत्तर मिलता है कि पूर्व जन्म के पुण्य-पाप के आधार पर यह जन्म निर्भर है। इसी पर जाति, आयु, भोग, सुख दुख, मान अपमान, हानि लाभ मनुष्य को प्राप्त होते हैं। ईसाई, मुसलमान तो खुदा की मर्जी' कहकर अपने खुदा को ही अन्यायी और निष्ठुर सिद्ध कर देते हैं, कि उसी की मर्जी से कोई गरीब और दु:खी जन्मा।

१७–पशुओं के बलिदान से ईश्वर अथवा देवी-देवता प्रसन्न नहीं होते। धर्म या यज्ञ के नाम पर मन्दिर आदि में पशु हिंसा करना घोर पाप है। अपने बच्चों के सुख की कामना से, गूंगे पशुओं के बच्चों के गले काटना निश्चय ही अपनी और देवी देवताओं की बुद्धि का अपमान करना है। पाप है।

१८–भूत, प्रेत जादू, टोना, तागा, तावीज, मन्त्र-तन्त्र झाड़-फुंक, सब मूर्खों को बहकाने ठगने को हैं। ज्योतिषियों के परामर्श से कष्ट निवारण के लिए रुपये देकर, किसी दूसरे से जाप कराना अपने-आपको धोखा देना है। स्वयं

ही अर्थ विचार कर महा-मृत्युञ्ज,य गायत्री ओंकार आदि का (शुभ कर्मी बन कर) जाप करें और फिर प्रभु की कृपा का साक्षात् प्रादुर्भाव देखें।

१९--बिना किसी स्वार्थ के संसार का उपकार करना, अज्ञानता नास्तिकता और कुप्रथाओं का नाश करना, पीस डालने वाले रीति-रिवाजों की फजूल खर्चियों से गरीबों को बचाना, सदाचरण और प्रभु भक्ति करना कराना ये मनुष्य के जीवन में उत्तमता, कृतकार्यता, प्रसन्नता, माधुर्य और मृदुता लाते हैं। (आर्य समाज के नियम ५, ६)

२०--आपद् धर्म के रूप में युवा विधवाओं का पुनर्विवाह होना चाहिये। कुकर्म, अधर्म, अपवाद, अपयश और पश्चात्ताप से बचना चाहें तो ४० वर्ष तक की 'युवा विधवा' का पुनर्विवाह कर दें।

२१--शूद्रों या अपने से भिन्न जाति के साफ सुथरे स्त्री-पुरुषों द्वारा पकाये हुये भोजन से धर्म-भ्रष्ट नहीं होता। परन्तु अधर्म, अन्याय, घूँस, ब्लैक, मिलावट आदि पापकर्मों द्वारा प्राप्त धन से खरीदे हुये अन्न के खाने से अवश्य धर्म-भ्रष्ट होता है।

२२--वैदिक धर्म 'सनातन धर्म' और 'आर्य समाज' कोई अलग धर्म नहीं। वेद में आर्य का अर्थ श्रेष्ठ, सदाचारी, सुशील, उदार, ईश्वरविश्वासी है। इन गुणों से वैदिक धर्मी जनों का संगठन 'आर्य समाज' कहलाता है। वेदानुसार 'उपरोक्त गुण धारण करने वाले सभी' व्यक्ति श्रेष्ठ हैं, आर्य हैं।

२३--मांस मनुष्य का आहार नहीं। मांसाहारी जीवों के दांत, आंत, पंजे नाखून, विभिन्न बने हैं। प्रकृति ने तो मनुष्य को बुद्धि दी है, सौम्य देह प्रदान किया है। वेद ने मांस अभक्ष्य पदार्थ बताया है। ईशोपनिषद् में आया है, "मागृधा कस्यास्विद्धनम्"। पशुओं को जीवन धन से वंचित मत करो। अपने चस्के के लिये जीव हत्या पाप है। मासाहारी हत्यारे बन कर, भगवान से अपने दुखनिवारण को कोई प्रार्थना ऐसे लोग कैसे मनवा सकेंगे?

२४--"विद्या धर्मेण शोभते।' अधर्मी, कर्तव्यहीन, चरित्र-हीन, स्वार्थरत तथा खाने-पीने पहनने, दिखावा करने और मन की मौज तक जिसका जीवन सीमित हो, ऐसे किसी भी 'दुर्गुणयुक्त ग्रेजुएट एव डबल ग्रेजुएट, शास्त्री

आदि को विद्वान कहना अशोभनीय है। 'विद्या धर्मेण शोभते।' विद्या की शोभा 'शुभकर्म धर्म और पवित्र जीवन' ही से है। सन्ध्या, यज्ञ, स्वाध्याय सत्संग, मन्दिर-पूजा, दान मनुष्य की सब निष्फल हैं यदि पवित्र आचरण वाला नहीं।

२५---यही आर्य समाज की मान्यता है, यही वैदिक धर्म का सन्देश है, जैसा कि आर्य समाज के प्रवर्तक, वेदों के प्रकाण्ड पण्डित, प्रामाणिक वेद भाष्यकार महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों, उपनिषदों, दर्शनशास्त्रों, मनुस्मृति आदि के आधार पर धर्म का सच्चा मर्म हम पर उद्घाटित किया किया है। महामना मदन मोहन मालवीय, श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री महात्मा गांधी, श्री आचार्य विनोबा भावे, श्री तिलक जी महाराज, श्री अरविन्द, महात्मा हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती तथा अनेकों धर्माचार्यों ने श्री स्वामी दयानन्द महाराज को वैसा ही मान दिया है, जैसा जगद्गुरु शंकराचार्य आदि दिव्य आत्माओं को मिला है।

आत्मा में गङ्गा बहे ।।

आत्मा में गङ्गा बहे, क्यों नहीं मन न्हावे।
इन्द्रियों को जीत, प्रीत ईश्वर से लावे।
कहाँ पाये परम धाम जो कि इत उत धावे। आत्मा में गङ्गा बहे०
भाई बन्धु, मित्र यार, वन में तोहे आवें डार।
छूट जाये सब परिवार, धर्म साथ जावे ।। आत्मा में गङ्गा बहे०
नवलसिंह बार-बार ईश्वर से कर पुकार।
मनुष्य का शरीर फिर, मुश्किल हाथ आवे ।। आत्मा में गङ्गा बहे०

जीवित और मृत की कसौटी

"माता-पिता, गुरु, अध्यापक, उपकारक के प्रति आदर—परमेश्वर में प्रीति, पवित्र कमाई, शुद्धाचरण, दान की वृत्ति, 'मालिक, नौकर, पड़ोसी, सम्बन्धी साथी, सन्तानों के प्रति मधुर व्यवहार, सहनशीलता, देश की ममता यदि आप में ये सभी गुण हैं तो जीवित हो, अन्यथा चलती-फिरती मृत लाश हो।"

आर्य समाज के नियम

१---सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२---ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३---वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४---सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५---सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

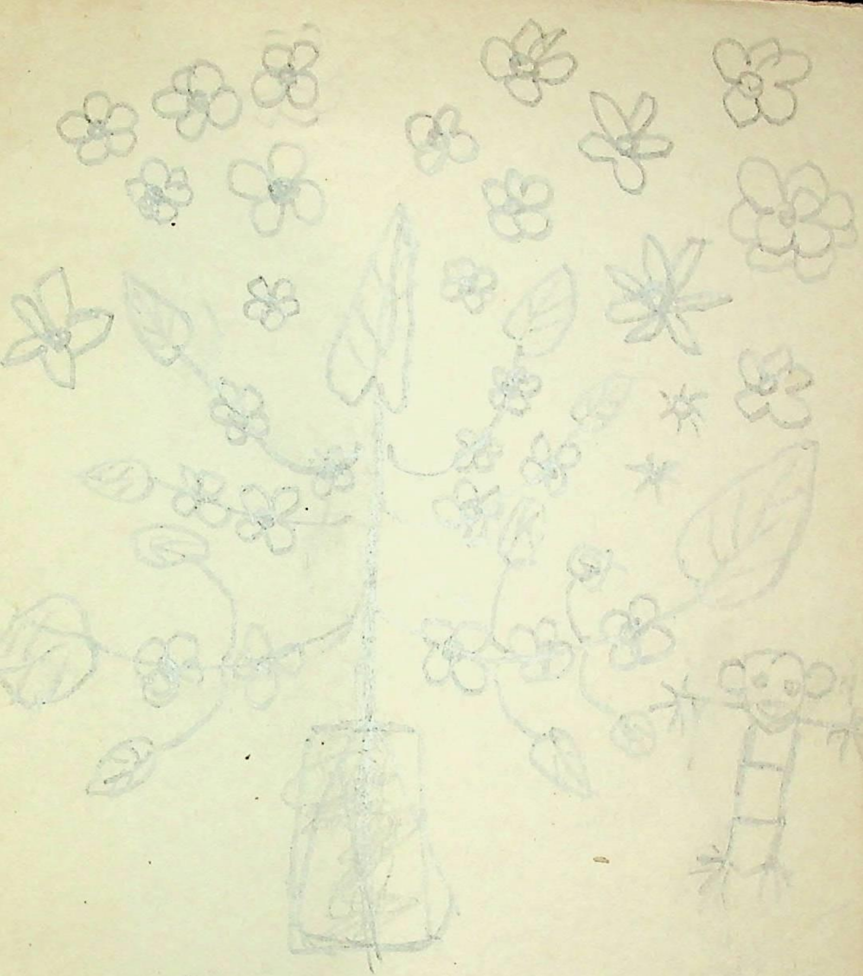
६---संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७---सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८---अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९---प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०---सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।



मोनिका कानो